संगीत

तबला एवं पखावज

हमारे अवनद्ध वाद्य

कक्षा 12 के लिए संगीत की पाठ्यपुस्तक

© NCERT
not to be republished

विद्ययाऽमृतमश्नुते
एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

Reprint 2025-26

12151 – संगीत – तबला एवं पखावज — हमारे अवनद्ध वाद्य
कक्षा 12 के लिए संगीत की पाठ्यपुस्तक

ISBN 978-93-5292-511-7

प्रथम संस्करण
सितंबर 2023 भाद्रपद 1945

PD 5T RPS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् , 2023

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी., प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 दूरभाष : **011-26562708**

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 दूरभाष : **080-26725740**

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 दूरभाष : **079-27541446**

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप
पनिहटी
कोलकाता 700 114 दूरभाष : **033-25530454**

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 दूरभाष : **0361-2674869**

₹ 160.00

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग	:	अनूप कुमार राजपूत
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	अरुण चितकारा
मुख्य व्यापार प्रबंधक	:	विपिन दिवान
मुख्य संपादक (प्रभारी)	:	बिज्ञान सुतार
संपादन सहायक	:	ऋषिपाल सिंह
सहायक उत्पादन अधिकारी	:	सुनील कुमार

आवरण एवं सज्जा
बैनियन ट्री

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा एजुकेशनल स्टोर, एस-5, बुलंदशहर रोड, इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-I गाज़ियाबाद (उ.प्र.) द्वारा मुद्रित।

© NCERT not to be republished

आमुख

आप सभी विद्यार्थियों के समक्ष हमें कक्षा बारहवीं के लिए यह पाठ्यपुस्तक प्रस्तुत करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है। इसके पूर्व कक्षा ग्यारहवीं के सभी जिज्ञासु एवं मेधावी विद्यार्थियों के लाभार्थ तबला एवं पखावज अवनद्ध वाद्यों पर आधारित एक पुस्तक प्रकाशित की जा चुकी है। ताल के अन्य सूक्ष्म व जटिल सिद्धांतों एवं अवधारणाओं को और गहनता से समझने के लिए कक्षा बारहवीं के विद्यार्थियों हेतु इस पाठ्यपुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसके अध्ययन से उच्च शिक्षा के लिए भी विद्यार्थियों का मार्ग प्रशस्त होगा। तबला एवं पखावज वाद्यों का अध्ययन कर इस विषय में स्नातक, परास्नातक व शोध करने की रूचि रखने वाले विद्यार्थियों के लिए यह पाठ्यपुस्तक एक नींव का काम करेगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में विस्तार से वर्णित है कि प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) से माध्यमिक शिक्षा और शिक्षक-शिक्षा के विभिन्न चरणों में संगीत, कला एवं शिल्पकला विषयों पर विशेष बल दिया जाए। शिक्षा, विद्यार्थियों के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं का संतुलित विकास करे तथा यह विचार करते हुए कि उम्र के प्रत्येक पड़ाव पर विद्यार्थियों के लिए क्या रूचिपूर्ण है और क्या नहीं, स्कूल के पूरे पाठ्यक्रम में संगीत, कला एवं शिल्प का समावेश अवश्य ही किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस बात पर भी प्रकाश डालती है कि विद्यार्थियों को, विशेष रूप से माध्यमिक स्तर में अध्ययन करने के लिए, अधिक लचीलापन और विषयों को चुनने के विकल्प दिए जाएँगे जिनमें कला और शिल्प भी शामिल होंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बहुभाषावाद और भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत सीखने पर भी विशेष बल दिया गया है। संस्कृत ग्रंथों में संगीत के विशाल भंडार विद्यमान हैं। इस बिंदु को ध्यान में रखते हुए बारहवीं की पुस्तक में संस्कृत के संबंधित श्लोक और ग्रंथों से लिए गए विषयों का उल्लेख है। भारतीय संगीत के गहन अध्ययन से भाषा के साथ-साथ संगीत की सामग्री को भी जानने का मार्ग प्रशस्त होता है। हम आशा करते हैं कि इन ग्रंथों में ताल/लय एवं वाद्यों के बारे में पढ़कर आप संगीत के दूसरे ग्रंथों के बारे में जानने के लिए उत्सुक होंगे जिससे संस्कृत भाषा की नींव तो दृढ़ होगी ही, साथ ही भारत के पुरातन शास्त्रों का ज्ञान भी सशक्त होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 स्पष्ट करती है कि कला शिक्षा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लाने के लिए उच्च शिक्षा संस्थानों एवं शिक्षक-शिक्षा संस्थानों में संगीत के पाठ्यक्रम को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। कक्षा ग्यारहवीं एवं बारहवीं की पाठ्यपुस्तक बनाने का यही उद्देश्य है कि आप जैसे मेधावी विद्यार्थी विश्वविद्यालय में इस विषय को पढ़कर आजीवन कला एवं उसके सौंदर्यशास्त्र का संरक्षण करने के लिए प्रेरित होंगे।

उच्च माध्यमिक स्तर पर पाठ्यपुस्तक, *संगीत – तबला एवं पखावज — हमारे अवनद्ध वाद्य, कक्षा 12* प्रकाशित की जा रही है। प्रस्तुत पुस्तक में, अवनद्ध वाद्यों के इतिहास, ताल के दस प्राण, उत्तर एवं दक्षिण भारतीय संगीत की ताल-लिपि पद्धति, वाद्यों का विवरण, विभिन्न काल में प्रचलित वाद्य इत्यादि सभी विषयों पर विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त जानकारी प्रदान की गई है। तबला, पखावज या

© NCERT not to be republished

अन्य अवनद्ध वाद्यों में रूचि रखने वाले कला प्रेमियों के लिए भी यह पाठ्यपुस्तक लाभप्रद सिद्ध होगी। पाठ्यपुस्तक की गुणवत्ता और सुधार के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् वचनबद्ध है और सुझावों एवं टिप्पणियों का स्वागत करती है जो भविष्य में पुस्तक के संशोधन और परिष्करण में हमारी सहायता करेंगे। आशा करता हूँ कि इस पाठ्यपुस्तक को विद्यार्थी ध्यान से पढ़ेंगे और विषय-वस्तु का लाभ उठाएँगे।

प्रोफेसर दिनेश प्रसाद सकलानी
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
6 सितंबर 2023

© NCERT
not to be republished

Reprint 2025-26

प्राक्कथन

संगीत– तबला एवं पखावज, कक्षा 11 की पाठ्यपुस्तक में संगीत की परिभाषा, गायन के विभिन्न प्रकार, जैसे– शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम एवं लोकसंगीत, ध्वनि की उत्पत्ति, बजने वाले वर्ण/बोल निकास की विधि, तबला/पखावज की उत्पत्ति एवं विकास और उनका सचित्र वर्णन, ताल-लिपि पद्धति, ताल के बोल एवं साधारण लयकारी, लय एवं उसके प्रकार, कायदों का विस्तार, टुकड़ा, मोहरा एवं वाद्यों के वर्गीकरण एवं नाट्यशास्त्र में वर्णित लघु-गुरू और प्लुत के बारे में चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त विभिन्न घरानों का परिचय एवं कुछ कलाकारों की जीवनियाँ भी दी गई हैं।

कक्षा 11 की पाठ्यपुस्तक के बाद कक्षा 12 की यह पाठ्यपुस्तक अवनद्ध वाद्यों के इतिहास, प्राचीन से वर्तमान समय में बदलते समाज की रूचि और उसके अनुसार संगीत के क्रमागत विकास जैसे विभिन्न विषयों को अपने में समेटे हुए है।

भूदुंदुभि-दुदुंदुभि, आडंबर, पुष्कर, नक्कारा, दुक्कड़, खोल, ढोल, घटम्, मृदंगम्, पुंग, नाल, पखावज और तबला आदि अवनद्ध वाद्यों ने समय-समय पर संगीत को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इनका दायरा लोकसंगीत से लेकर शास्त्रीय संगीत तक फैला है। कालांतर में अवनद्ध वाद्यों की सृजनात्मकता का और अधिक विस्तार हुआ है। लय तथा ताल दिखाने के साथ-साथ गीत के शब्दों और भावों के अर्थ को भी विभिन्न 'बोलों' द्वारा और अधिक मुखरित किया गया है। इस भूमिका के कारण सांगीतिक प्रस्तुतियाँ बेहतर सुनायी देने लगी हैं। विभिन्न प्रकार की गायन शैलियों के लिए अलग-अलग अवनद्ध वाद्यों का निर्माण हुआ है। यदि उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत की बात करें, तो तबला एवं पखावज आज सर्वाधिक लोकप्रिय वाद्य हैं।

परंपरागत रूप से देवालयों में मृदंग/पखावज का प्रयोग होता रहा है, लेकिन बदलते समय के साथ अवनद्ध वाद्यों ने अपना विशेष स्थान राजदरबारों, महफ़िलों एवं संगीत के महत्वपूर्ण मंचों पर बनाया है। कर्नाटक संगीत के विभिन्न प्रकारों की संगत के लिए मृदंगम् का प्रयोग व्यापक रूप से होता रहा है, लेकिन आज भक्ति संगीत के साथ-साथ ध्रुपद, धमार, सितार, सरोद, सुरबहार, कथक नृत्य इत्यादि के साथ संबंधित होकर पखावज अपनी क्षमता का परिचय दे रहा है। इसके विपरीत, तबले ने मुगलकाल से अपनी यात्रा शुरू की थी। लेकिन शनैः-शनैः अपने रूप को निखारते और सँवारते हुए आज इसने स्वयं को इतना सक्षम और सबल बना लिया है कि शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम, लोक और फिल्म संगीत सभी के साथ यह न केवल कदम-से-कदम मिलाकर चल रहा है, बल्कि उन्हें समृद्ध भी कर रहा है। 19वीं शताब्दी से तबला एकल वादन परंपरा का प्रारंभ हुआ। अपने निजी नाद सौंदर्य और लयात्मकता के अनूठे प्रयोगों के कारण तबले का एकल वादन श्रुति मधुर एवं जनप्रिय है। वर्तमान में तबला वादक संगीत के प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

आज हम किसी भी वाद्य जैसे कोंगों, बौंगो, जेम्बे, ढोलक, ड्रम आदि का प्रयोग लय-ताल प्रदर्शन के लिए करते हैं, तो उससे स्पष्ट होता है कि इनकी प्रेरणा तबला, पखावज, मृदंग एवं घटम् आदि से ली गई है। इससे यह स्पष्ट होता है कि किसी भी अवनद्ध वाद्य को बजाने के पूर्व तबला, पखावज, घटम् अथवा मृदंग आदि जैसे वाद्यों की आधारभूत जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

© NCERT not to be republished

हमारे जीवन के बहुत से क्रियाकलाप लय से जुड़े हुए हैं। जब हम साँस लेते हैं; बात करते हैं; चलते हैं; हाथ-पैर हिलाते हैं; या जब पेड़-पौधे हवा से झूमते हैं; पृथ्वी अपनी धुरी पर और सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है; तो इन सबमें एक प्रकार की लय का समावेश होता है। इसी लय को मनुष्य ने समझा और उस पर गहन शोध किए। यह पाठ्यपुस्तक उसी लय की कहानी को बता रही है, जो हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण तत्व है। संगीत को मनीषियों ने लय में बाँधकर एवं उसकी विभिन्न तारतम्यता को जाँचकर अनेक वाद्ययंत्रों की रचना की तथा उस पर विभिन्न लय विन्यासों का अभ्यास किया।

इस पाठ्यपुस्तक में तबला एवं पखावज का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। कुछ सांगीतिक परिभाषाएँ, जो शास्त्रीय संगीत के आधार तत्व हैं, उनका भी परिचय दिया गया है। इसके अतिरिक्त कुछ अवनद्ध वाद्यों का वर्णन, इलेक्ट्रॉनिक वाद्ययंत्रों का वर्णन, तबला एवं पखावज के वर्णों का विवरण एवं वादन विधि, कुछ तालों के ठेके लिखने की पद्धति, भातखंडे ताल-लिपि पद्धति, तबला एवं पखावज के कुछ महान कलाकारों एवं संगीतज्ञों के योगदान आदि विषयों की विस्तृत चर्चा की गई है। हम जानते हैं कि भारतीय संगीत में 13वीं शताब्दी के उपरांत हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत पद्धतियों की दो भिन्न धाराएँ बहने लगी थीं। इस पाठ्यपुस्तक में कर्नाटक संगीत के अवनद्ध वाद्यों का विवरण भी दिया गया है। हिंदुस्तानी संगीत में घरानों की भी चर्चा की गई है जिसमें विशेष व्यक्तियों का उल्लेख और उनकी शैलियों की विशेष बातों का वर्णन है। विभिन्न तरह के संगीत के साथ किस तरह लयात्मक विवेचन ने संगीत को उत्कृष्ट बनाया, यह जानना भी विद्यार्थियों के लिए आवश्यक है।

आप सभी वाद्यों को बजाना सीखें एवं इस पाठ्यपुस्तक के अध्यायों को पढ़कर अपना ज्ञानवर्द्धन करें। यह पाठ्यपुस्तक उच्च माध्यमिक स्तर पर उन बच्चों की दक्षताओं को बढ़ाने के लिए है, जो अवनद्ध वाद्य-वादन सीख रहे हैं।

इन वाद्यों को सीखने के प्रतिफल—

- अवनद्ध वाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास के बारे में जानना।
- तबला एवं पखावज की मुख्य विशेषताओं को विस्तार से समझना।
- अवनद्ध वाद्यों — तबला एवं पखावज के मूल बोलों का ज्ञान।
- कर्नाटक पद्धति में ताल एवं लिपि पद्धति का विवेचन।
- अवनद्ध वाद्यों के ताल, रचना प्रकारों को लिपिबद्ध करना।
- अवनद्ध वाद्यों के विकास में सहायक तबला एवं पखावज के प्रसिद्ध कलाकारों एवं उनके घरानों के बारे में विस्तार से जानना।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा तबला एवं पखावज पर पहली बार पाठ्यपुस्तक बनायी गई है। हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक आपको पसंद आएगी। आप पाठ्यपुस्तक में सुधार हेतु अपने महत्वपूर्ण सुझाव हमें अवश्य प्रेषित करें ताकि दूसरे संस्करण में इस पाठ्यपुस्तक को और भी समृद्ध बनाया जा सके।

शर्बरी बनर्जी,
सहायक प्रोफेसर
कला एवं सौंदर्यबोध शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

मुख्य सलाहकार

मुकुंद नारायण भाले, *प्रोफ़ेसर* एवं *अध्यक्ष* (सेवानिवृत्त), इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, छत्तीसगढ़

सदस्य

अमित कुमार वर्मा, *सहायक प्रोफ़ेसर*, विश्वभारती विश्वविद्यालय, शांति निकेतन, पश्चिम बंगाल

अजय कुमार, *सहायक प्रोफ़ेसर*, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आशीष देवांगन, संगीत विशेषज्ञ, बिलासपुर, मध्यप्रदेश

मधु बाला सक्सेना, *प्रोफ़ेसर* (सेवानिवृत्त), संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली तथा *कार्यकारी कुलपति*, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र, हरियाणा

सचिन सागर, संगीत लेखक, खुर्जा, उत्तर प्रदेश

सतीश गोथरवाल, *अध्यापक*, केंद्रीय विद्यालय, रतलाम, मध्यप्रदेश

शिव कुमार शुक्ल, *अध्यापक*, +2 हाई स्कूल कैमूर, भभुआ, बिहार

विजय शंकर मिश्र, संगीत लेखक एवं *निदेशक*, सोसाइटी फ़ॉर एक्शन थ्रू म्यूज़िक (सम), महरौली, नई दिल्ली

समन्यवक

शर्बरी बनर्जी, *सहायक प्रोफ़ेसर*, कला एवं सौंदर्यबोध शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली

© NCERT not to be republished

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में सहयोग के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् विभिन्न संस्थाओं, विषय-विशेषज्ञों, शिक्षकों एवं विभागीय सदस्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

परिषद्, पवन सुधीर, *प्रोफ़ेसर* एवं *विभागाध्यक्ष* तथा ज्योत्सना तिवारी, *प्रोफ़ेसर*, कला एवं सौंदर्यबोध शिक्षा विभाग के प्रति कृतज्ञ है, जिन्होंने अपना मूल्यवान समय और सहयोग प्रदान कर इस पुस्तक को उपयोगी बनाने हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

परिषद्, इस पुस्तक की रचना हेतु गठित पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के सदस्यों के प्रति उनके अथक परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के सदस्यों के अतिरिक्त इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में कई शिक्षकों ने भी अपना योगदान दिया है, परिषद् उन सभी के प्रति अपना आभार प्रकट करती है। पाठ्यपुस्तक के आवरण एवं सज्जा के लिए परिषद्, श्वेता राव एवं बैनियन ट्री के सभी सदस्यों के प्रति आभारी है।

परिषद्, संगीत नाटक अकादमी के सदस्यों, जयंत चौधरी एवं प्रीत पाल (फोटो सेक्शन) के प्रति आभारी है, जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में उदारतापूर्वक सहयोग प्रदान किया।

परिषद्, पुस्तक विकास के विभिन्न चरणों में सहयोग के लिए कला एवं सौंदर्यबोध शिक्षा विभाग के हर्ष वर्धन त्यागी, *जे.पी.एफ*; संजू शर्मा एवं मोहम्मद आतिर, *ग्राफ़िक डिज़ाइनर*; इन्द्र जीत एवं काजल कुमारी, *टाइपिस्ट;* के प्रति भी आभार प्रकट करती है।

परिषद्, इस पुस्तक के संपादन और इसे अंतिम रूप देने के लिए प्रकाशन प्रभाग के अतुल मिश्रा, *संपादक* (संविदा); श्रीया, *संपादन सहायक* (संविदा); सुरेंद्र कुमार, *इंचार्ज*, डी.टी.पी. प्रकोष्ठ एवं नर्गिस, *डी.टी.पी. ऑपरेटर* (संविदा); के प्रति आभार व्यक्त करती है।

© NCERT not to be republished

भूमिका

भारतीय संगीत का ऐतिहासिक अवलोकन

संगीत मानवीय भावनाओं एवं ईश्वरीय आराधना की अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। इसकी उत्पत्ति के विषय में भारत में कई पौराणिक मत प्रचलित हैं, जिनमें से दो अधिक प्रसिद्ध हैं। पहले मत के अनुसार, जगत के रचयिता ब्रह्माजी ने धरती पर मनुष्यों को विभिन्न प्रकार के कष्टों से ग्रसित देखकर उनके आत्मिक और बौद्धिक आनंद के लिए संगीत को रचा। ब्रह्माजी से इसे भगवान शंकर ने सीखा। शंकर जी से यह कला माता सरस्वती तक पहुँची। माता सरस्वती से इसे सीखकर गंधर्व नारद ने इसे अन्य गंधर्वों और किन्नरों सहित महर्षि भरत और हनुमान आदि को भी सिखाया, जिनके माध्यम से यह कला धरतीवासियों तक पहुँची। दूसरे पौराणिक मत के अनुसार, संगीत की उत्पत्ति 'ओउम्' (ॐ) शब्द से हुई है। ओउम् (ॐ) शब्द के तीन अक्षर अ, उ और म् क्रमश: ब्रह्मा, विष्णु और महेश के प्रतीक हैं। ओउम् से ही नाद, नाद से श्रुति और श्रुति से स्वरों की उत्पत्ति मानी गई है।

भारत सहित दुनिया भर के संगीत की उत्पत्ति धर्म से मानी गई है। इसीलिए भारत में पौराणिक कथाओं के अनुसार इसे विभिन्न देवी-देवताओं से जोड़कर देखा जाता है, साथ ही भक्ति एवं आनंद का माध्यम भी माना जाता है। भगवान शंकर को नटराज कहकर तांडव नृत्य का प्रणेता एवं भैरव, हिंडोल, मेघ, दीपक और श्री जैसे रागों का सर्जक माना गया है। पार्वती जी की शयन मुद्रा देखकर रूद्र वीणा का निर्माण एवं स्वयं पार्वती को लास्य नृत्य का सर्जक माना जाता है। ऐसा माना गया है कि तांडव और लास्य नृत्य के संयोग से ही अन्य शास्त्रीय नृत्यों का प्रादुर्भाव हुआ है। माँ सरस्वती को वीणा के साथ, श्री कृष्ण को वंशी और नृत्य के साथ, गणेश को मृदंग के साथ और नारद को इकतारा के साथ जोड़कर भारतीय संगीत के महत्व को प्रतिपादित करना हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है।

यूनानी भाषा में संगीत के लिए मौसिकि (MOUSIKE), लैटिन और पुर्तगाली भाषा में मुसिका (MUSICA), जर्मन भाषा में मूसिक (MUSIK) और अंग्रेज़ी भाषा में म्यूज़िक (MUSIC) जैसे शब्दों का प्रयोग होता है। अरबी और फ़ारसी आदि भाषाओं में इसे मौसिकी कहा जाता है। इन सभी शब्दों का आधार यूनानी भाषा का म्यूज (MUSE) शब्द है, जिसका अर्थ है— गान की प्रेरक देवी (The Inspiring Goddess of Songs)

भारत में प्रचलित सभी धर्मों जैसे– हिंदू, इस्लाम, ईसाई, सिख, बौद्ध और जैन आदि में संगीत को तो महत्व मिला ही, इनके संदेशों, उपदेशों और विचारों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए भी संगीत का ही सहारा लिया गया। ऐसा माना जाता है कि संगीत के माध्यम से कही गई बात सीधे हृदय तक पहुँचती है और फिर वहीं बस जाती है।

संगीत की उत्पत्ति के विषय में एक और महत्वपूर्ण मत भी है। आदिम मानव, जो जंगलों में रहता था और जब भाषा और बोली का जन्म नहीं हुआ था, तब वह अपनी बात, अपनी भावनाएँ लोगों तक कैसे पहुँचाता था? जंगल में अचानक आग लग जाने, किसी हिंसक पशु के आ जाने, किसी की मृत्यु होने अथवा कोई हर्षदायक घटना घटित होने पर वह अपने मनोभावों को आखिर कैसे व्यक्त करता होगा?

© NCERT not to be republished

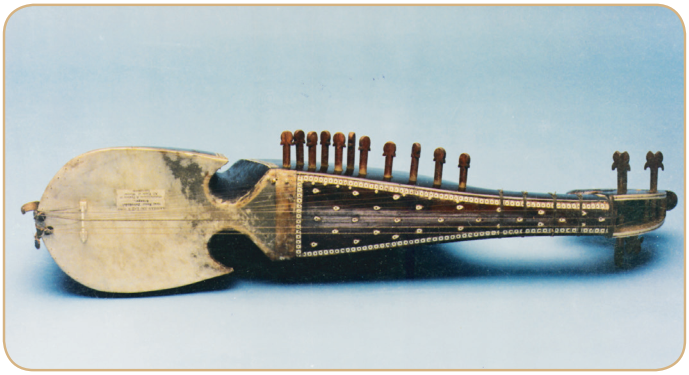

चित्र (i) – रबाब सतरंग, जम्मू और कश्मीर

वाणी के उतार-चढ़ाव और हस्तमुद्राओं के माध्यम से ही तो भावनाओं की अभिव्यक्ति होती थी। वाणी का यह उतार-चढ़ाव ही आगे चलकर नाद कहलाया। यह ध्वनि अर्थात नाद अग्नि और वायु के संयोग, यानी दो वस्तुओं के घर्षण से उत्पन्न होती है। लेकिन, सामान्य ध्वनि और नाद में एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंतर होता है। नाद सिर्फ उस मधुर और कर्णप्रिय ध्वनि को कहा जाता है जो संगीतोपयोगी हो। शोरगुल, चीख-पुकार, गाड़ी के हॉर्न आदि जैसी ध्वनियों को नाद के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता है। इस संगीतोपयोगी नाद को आहत नाद कहा जाता है और माना जाता है कि यह मुक्तिदायक है। श्रुतियाँ, स्वर तथा गायन, वादन एवं नृत्य की समस्त रचनाएँ आहत नाद के ही अंतर्गत आती हैं।

नाद का एक प्रकार और है, जिसे सुना नहीं सिर्फ़ अनुभव किया जा सकता है। यह किसी घर्षण अथवा प्रहार किए बिना ही उत्पन्न होता है। इसलिए इसे अनाहत नाद कहते हैं। इस नाद को ऋषि-मुनियों, योगियों और श्रेष्ठ संगीतज्ञों ने अपनी आध्यात्मिक गहराइयों से बार-बार अनुभव किया है और इसका गुणगान किया है। जब भी कोई साधक अपनी साधना की गहराई में जाकर समाधि की अवस्था में पहुँचता है, तो वहाँ उसके शरीर में स्थित सात योगिक चक्रों से सात स्वरों की गुंजार हृदय की गहराइयों में स्पष्ट सुनायी देती है। संगीतज्ञों के मतानुसार अंतरात्मा की इसी आवाज़ से प्रेरणा पाकर भिन्न-भिन्न स्वर लहरियों का जन्म हुआ है।

समाज में शुरू से ही संगीत की दो भिन्न धाराएँ प्रवाहित होती रही हैं— मार्गी संगीत और देशी संगीत। मार्गी संगीत के विषय में विद्वानों का मानना है कि यह पूरी तरह से नियमबद्ध था और पूजा तथा यज्ञ आदि के अवसर पर पूरे विधि-विधान एवं साँसों के व्यवस्थित उतार-चढ़ाव के साथ इसका गान होता था। इसके अंतर्गत मूलत: वैदिक ऋचाओं का ही गायन होता था। ऐसा माना जाता है कि इसके गायन से मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता था, अतः इसे मार्गी संगीत कहा गया। इसमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन की अनुमति नहीं होती थी। लेकिन, सभा समारोहों में आमोद-प्रमोद के लिए, आम लोगों द्वारा लोक रंजन के लिए जिस संगीत की प्रस्तुति हुई, वह देशी संगीत कहलाया। हृदय रंजन इसका मुख्य उद्देश्य था। इस संगीत में स्थानीय वातावरण, उच्चारण भेद, शैलीगत भिन्नता आदि के कारण स्थान-स्थान पर परिवर्तन होते रहे। मूलत: अपने देश अर्थात स्थान विशेष से जुड़े होने के कारण ही इसे देशी संगीत कहा गया। जन समाज में लोक रंजन के लिए प्रस्तुत सभी प्रकार के संगीत को देशी संगीत के अंतर्गत रखा जा सकता है, चाहे वह लोक संगीत हो अथवा शास्त्रीय संगीत।

विभिन्न जनपदों और प्रदेशों के लोक संगीत अपनी सुर, लय, बोली और भाषा आदि के आधार पर एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हैं। यही लोक संगीत क्रमश: सांगीतिक गुणवत्ता से विकसित होता रहा। इसी कारणवश हमें दिखता है कि शास्त्रीय और उपशास्त्रीय संगीत की अनेक धाराएँ भी लोक

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

संगीत की कोख से ही जन्मी हैं। इसके अंतर्गत ध्रुवपद, धमार, खयाल, ठुमरी आदि जैसी गायन विधाओं को रखा जा सकता है और स्थान-भेद के कारण इनकी प्रस्तुतियों में अंतर देखा जा सकता है। इसी अंतर के कारण ध्रुवपद की अलग-अलग वाणियाँ बनीं, तो खयाल के अलग-अलग घराने और ठुमरी की अलग-अलग शैलियाँ।

देशी संगीत का उल्लेख सर्वप्रथम 7वीं शताब्दी के मतंग मुनि ने किया था। 13वीं शताब्दी के शारंगदेव के मतानुसार मार्गी संगीत वह है जिसके आविष्कर्ता ब्रह्मा, शंकर आदि देवता हैं और जिसका स्वरूप पूर्णत: शास्त्रोक्त है। जबकि, देशी संगीत जनरूचि पर आधारित है। यही कारण है कि मार्गी संगीत कुछ ही लोगों, यानी विद्वत वर्ग तक सीमित रहा, जबकि देशी संगीत जन-जन में समाहित हो अग्रसर हुआ।

गायन का आधार नाद यानी ध्वनि है। इनकी तारता अर्थात ऊँचाई और निचाई के आधार पर विद्वानों ने 22 श्रुतियों और 7 मुख्य तथा 5 विकृत स्वरों का निर्धारण किया है जिन्हें क्रमश: *षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत* और *निषाद* कहा गया। सुविधा की दृष्टि से इन्हें 'सा', 'रे', 'ग', 'म', 'प', 'ध' और 'नि' कहते हैं। इनमें 'सा' और 'प' अचल स्वर हैं। 'रे', 'ग', 'ध' और 'नि' के क्रमश: शुद्ध और कोमल दो तरह के स्वर तथा *मध्यम* का शुद्ध और तीव्र रूप प्रचलन में है। इस तरह आज कुल 12 स्वर प्रचलित हैं। लेकिन, वैदिक काल में सिर्फ़ तीन स्वरों के आधार पर संगीत की प्रस्तुतियों का प्रचलन था। सात स्वरों के एक समूह को सप्तक कहा जाता है।

स्वरों की उत्पत्ति के विषय में भी विद्वानों के कई मत प्रचलित हैं, एक संक्षिप्त दृष्टि उन पर भी डालते हैं। नारद कृत *नारदीय शिक्षा* के अनुसार मयूर की बोली से 'सा', गाय की आवाज़ से 'रे', बकरे से 'ग', कौवे से 'म', कोयल से 'प', घोड़े से 'धा' और हाथी से 'नि' स्वरों की उत्पत्ति हुई है।

जैन आचार्य पार्श्वदेव ने अपने ग्रंथ *संगीत समय सार* में लिखा है कि सिर, कंठ, उर, तालु, जिह्वा और दाँत इन छह स्थानों से उत्पन्न स्वर *षड्ज* कहलाया। इसी *षड्ज* पर शेष छह स्वर आश्रित होते हैं। नाभि से उठकर कंठ तथा सिर से होते हुए जो ध्वनि वृषभ के समान नाद उत्पन्न करती है, वह *ऋषभ* कहलाती है। नाभि से उत्पन्न तथा कंठ एवं सिर से संबंध वह ध्वनि जो गंधर्वों को सुख प्रदान करती है, *गांधार* नाम से जानी जाती है। नाभि से उठकर हृदय से समाहित मध्यम स्थान में स्थिर होकर स्वर उत्पत्ति करने वाला स्वर *मध्यम* कहलाता है। होंठ, तालु, सिर और हृदय, इन चार स्थानों से उत्पन्न स्वर को *पंचम* कहा गया। वायु जब हृदय, कंठ, होंठ, तालु और सिर से होते हुए नाद उत्पन्न करती है, तो उसे *धैवत* कहा जाता है। इसी प्रकार वायु के द्वारा कंठ, तालु और सिर का समर्थन होने पर जिस स्वर से सभी स्वरों पर विराम लगता है, वह *निषाद* कहलाता है। जैन और बौद्ध धर्म के लगभग सभी तीर्थंकरों ने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए संगीत को माध्यम बनाया।

जब मानव कंठ से सृजित स्वर लहरियों ने लोगों को आनंदित करना आरंभ किया होगा, तब लोगों ने ऐसी ही अन्य स्वर लहरियों के लिए सोचना और प्रयास करना आरंभ किया होगा। परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्र संगीत की दुनिया से जुड़ते चले गए। 'वदते इति वाद्यम्' के अनुसार वाद्य उन्हें कहते हैं, जिनका वादन किया जा सके। तेरहवीं शताब्दी के महान ग्रंथकार आचार्य शारंगदेव ने

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

चित्र (ii) – बोरताल, असम

अपने ग्रंथ *संगीत रत्नाकर* में इन वाद्यों का चार भागों में वर्गीकरण इनकी वादन विधि आदि को ध्यान में रखते हुए किया, जो इस प्रकार है—

तत् अर्थात तंत्री वाद्य – इस श्रेणी के वाद्य स्वर प्रधान होते हैं। इसमें स्वरोत्पत्ति तंतु अथवा तार के आंदोलन द्वारा होती है। इन वाद्यों में लगे तारों को मिज़राब अथवा जवा से आंदोलित करके स्वरोत्पत्ति की जाती है जैसे– वीणा के विभिन्न प्रकार, सुरबहार, सितार, सरोद, तानपूरा, गिटार, मैंडोलिन आदि। कुछ वाद्यों को बजाने के लिए गज (Bow) प्रयोग किया जाता है, जैसे– सारंगी, इसराज, दिलरूबा, वायलिन, चेलो, तार शहनाई आदि।

अवनद्ध वाद्य – अवनद्ध वाद्य मुख्यत: लय और ताल प्रधान होते हैं। इसमें किसी धातु, लकड़ी या मिट्टी से निर्मित ढाँचे पर चर्म आच्छादित करके किसी लकड़ी या हाथ से प्रहार करके आवाज़ उत्पन्न की जाती है। तबला, पखावज, मृदंगम्, घटम्, ढोलक, नक्कारा, नाल, खोल, पुंग, ड्रम, कैटल ड्रम, बास ड्रम, टेनर ड्रम आदि अवनद्ध श्रेणी के ही वाद्य हैं।

सुषिर वाद्य – सुषिर वाद्य भी स्वर वाद्यों का ही प्रकार है, किंतु इनमें वायु के आंदोलन द्वारा स्वरोत्पत्ति की जाती है, जैसे– बाँसुरी, शहनाई, हारमोनियम तथा एकार्डियन आदि।

घन वाद्य – घन वाद्य मूलत: लय प्रधान होते हैं। इनका निर्माण कांसा, तांबा, पीतल अथवा लौह आदि धातुओं द्वारा होता है। घटम्, मँजीरा, झाँझ, करताल, घंटा, घुँघरू आदि घन वाद्यों की ही श्रेणी में आते हैं। इनके माध्यम से लय का निर्वहन किया जाता है।

भारतीय वाद्यों के वर्गीकरण की चर्चा करते समय हमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि संगीत एक सृजनात्मक कला है, अत: इसमें समय-समय पर परिवर्तन भी होते रहते हैं। आज हमारे संगीत में जलतरंग, नलतरंग, काष्ठतरंग जैसे नवनिर्मित वाद्य भी शामिल हो गए हैं, जो हैं तो मूलत: स्वर वाद्य, लेकिन इनकी वादन विधि घन वाद्यों जैसी है। इस बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है कि पहले अवनद्ध वाद्यों द्वारा ही पूरी संगत की जाती थी और घन वाद्य सिर्फ लय और ताल का निर्वहन करते थे, जबकि आज घन वाद्य सिर्फ ग्रामीण अंचल के लोक संगीत और भजन-कीर्तन तक सिमटकर रह गए हैं। आज शास्त्रीय, उपशास्त्रीय तथा सुगम संगीत की संगत के लिए कलाकारों की पहली पसंद अवनद्ध वाद्य ही होते हैं।

आइए, एक संक्षिप्त दृष्टि अवनद्ध वाद्यों की विकास यात्रा पर भी डालते हैं। प्रथम अवनद्ध वाद्य के रूप में भू-दुंदुभि नामक वाद्य का उल्लेख प्राप्त होता है। जमीन पर फैले चमड़े की परतों पर वृक्ष से गिरते पत्तों और टहनियों के कारण एक विशेष प्रकार की ध्वनि ने मानव को एक वाद्य के निर्माण की प्रेरणा दी।

© NCERT not to be republished
Reprint 2025-26

अत: उसने जमीन में गड्ढा खोदकर उसके ऊपर चर्म आच्छादित कर भू-दुंदुभि नामक वाद्य का निर्माण किया और उसे किसी मृत पशु की पूँछ या लकड़ी से बजाकर दूर-दूर तक बसे लोगों तक उसकी आवाज़ पहुँचाने लगा। बाद में छोटे आकार के मिट्टी के ढाँचे पर चर्म आच्छादित करके इंसान उसे भी बजाने लगा। इस वाद्य को दुंदुभि कहा गया। बाद में दुंदुभि का ढाँचा लकड़ी का बना और उसका मुख परिपक्व चर्म से बना, तथा इसके मुख को चारों ओर से चर्म बद्धियों से बाँधा गया। बद्धियों को मुलायम रखने के लिए उस पर तेल लगाया जाता था।

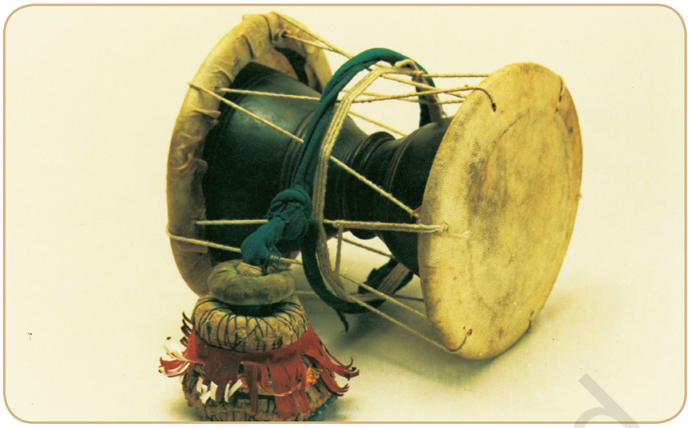

चित्र (iii) – इडैक्का, तमिलनाडु

उल्लेखनीय है कि तब अवनद्ध वाद्यों से लगभग एक ही तरह की ध्वनि निकलती थी। इस स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन पुष्कर नामक वाद्य के अविष्कार के बाद हुआ, जिसका वर्णन आचार्य भरत मुनि ने अपने ग्रंथ *नाट्यशास्त्र* में किया है। पुष्कर, तीन वाद्यों का समूह होने के कारण त्रिपुष्कर भी कहलाता था। यह प्रथम वाद्य था, जिसमें नदी किनारे की श्यामा मिट्टी (काली मिट्टी) लगाकर उसकी गूँज को कम और अधिक करने तथा इच्छित स्वर में मिलाने की व्यवस्था की गई थी और अँगुलियों से वादन के कारण जिसमें विभिन्न प्रकार के वर्णों का वादन संभव हो पाया था। भरत के अनुसार लगभग सौ प्रचलित अवनद्ध वाद्यों में से मात्र त्रिपुष्कर को ही मुख्य वाद्य माना जाता था। प्रस्तर शिल्पों में त्रिपुष्कर वादन का चित्रण ईसा की दो शताब्दी पूर्व से बाद की नवीं शताब्दी तक मिलता है। आज के लोकप्रिय अवनद्ध वाद्य पखावज और तबला इसी त्रिपुष्कर के दो भिन्न रूप हैं। त्रिपुष्कर का एक भाग आंकिक आज मृदंग और पखावज के नाम से लोकप्रिय है, तो दूसरा भाग उर्ध्वक जो सव्यक और वामक नामक दो वाद्यों का समूह था, आज तबला और बायां नाम से जाना जाता है। चूँकि तब ऐसे वाद्य मिट्टी के बनते थे, अत: उन्हें मृदंग भी कहा जाता था।

वाद्य वादन की परंपरा भारत में आरंभ से ही अत्यंत उन्नत अवस्था में रही। *वाल्मीकि रामायण* में तालयुक्त रामचरित गान के पाठ को संगीत लक्षण संपन्न कहा गया। राम के वन गमन और दशरथ के निधन से अनभिज्ञ भरत जब अपने मामा के यहाँ से अयोध्या लौट रहे थे, तब मृदंग एवं अन्य वाद्यों को मौन देखकर एक निश्चित अमंगल की आशंका उनके हृदय में उत्पन्न हुई थी। *मार्कंडेय पुराण* में ताल क्रियाओं के विवेचन के साथ-साथ वाद्यों और उनके प्रकारों पर भी प्रकाश डाला गया है।

छांदोग्य उपनिषद में गीत, वाद्य एवं नृत्य तीनों का उल्लेख हुआ है। मौर्यकाल में भी संगीत अत्यंत उन्नत अवस्था में था। वात्स्यायन मुनि ने 64 कलाओं में वादन को दूसरा स्थान दिया है। उनके समय में नारियों को भी संगीत अध्ययन की पूर्ण स्वाधीनता थी। बौद्ध धर्म में भी संगीत को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। *वैपुल्य सूत्र* के अनुसार, 'कुमार सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) के मनोरंजन हेतु उनके पिता राजा शुद्धोधन ने सहस्त्र वाद्ययंत्रों की व्यवस्था की थी, जिनमें एक हज़ार छोटे मृदंग, एक हज़ार करताल और हज़ारों

© NCERT not to be republished

दूसरे वाद्य थे जिनका दिन-रात विविध वाद्यों के वादन एवं गायन की संगत हेतु प्रयोग करके सिद्धार्थ के उदास मन को बहलाने का प्रयास किया जाता था। आम्रपाली जैसी अद्वितीय नृत्यांगना इसी समय हुई थी। महाकवि कालिदास के समय में मार्गी संगीत का प्रचार कम होने लगा था और देशी संगीत का अध्ययन तथा प्रचार-प्रसार बढ़ने लगा था। जाति राग एवं ग्राम रागों के अवशेष उस काल में केवल वैदिक अनुष्ठानों तक ही सीमित रह गए थे। मृदंग जैसे चर्म अवनद्ध वाद्यों का लय निर्वहन हेतु प्रयोग होता था। इस काल की महिलाएँ भी मृदंग वादन में निपुण होती थीं।

मार्गी और देशी संगीत की चर्चा करते हुए मार्गी और देशी तालों पर भी एक दृष्टि डाल लेते हैं। भरत मुनि ने अपने ग्रंथ *नाट्यशास्त्र* में पाँच मार्गी तालों का उल्लेख किया है— 1. चच्चत्पुट 2. चाचपुट 3. षट्पितापुत्रक 4. उद्घट्ट 5. सम्पक्वेष्टाक

तेरहवीं शताब्दी के महान ग्रंथकार आचार्य शारंगदेव ने अपनी पुस्तक *संगीत रत्नाकर* में 120 देशी तालों का विवरण दिया है। लेकिन, तेरहवीं शताब्दी से आज की 21वीं शताब्दी तक में न केवल समय बहुत बदल गया है, बल्कि संगीत और संगीतशास्त्र में भी काफी बदलाव आ चुके हैं। *संगीत रत्नाकर* में शारंगदेव ने भारत-भ्रमण कर अलग-अलग तरह के संगीत के साथ प्रचलित तालों का संग्रह करके अपने ग्रंथ में लिखा है। छोटी ताल के रूप में 6 मात्रा का दादरा और सबसे बड़ी ताल के रूप में 28 मात्रा की ब्रह्म ताल प्रचलित है।

जिस तरह से केवल दो या तीन स्वरों के प्रयोग से धुनें बनती हैं, राग नहीं; उसी तरह से केवल दो या तीन मात्राओं के प्रयोग से लयाकृति बनती है, ताल नहीं।

चूँकि उत्तर भारतीय संगीत में तालों पर काफी सूक्ष्म दृष्टि से और विस्तारपूर्वक काम हुआ है, इसलिए इस संगीत शैली में अलग-अलग गीत प्रकारों के लिए और अलग-अलग लय में बजाने के लिए भी तालों की रचना हुई है। इसीलिए, यहाँ समान मात्राओं की कई तालें भी प्रचलित हैं, जैसे– 14 मात्रा में दीपचंदी, झूमरा, आड़ा चारताल और धमार तथा 16 मात्रा में त्रिताल, तिलवाड़ा, जत, अद्धा और पंजाबी आदि। उत्तर भारतीय संगीत में प्रचलित तालों के ठेकों में कश्मीर से कन्याकुमारी तक एकरूपता पायी जाती है, जबकि अन्य संगीत शैलियों में ऐसा नहीं है। **ठेका उत्तर भारतीय संगीत की विशेषता है।**

भारतीय संगीत के इतिहास का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में जब भाषा, बोली और शब्द का जन्म नहीं हुआ था, तब भी आदिमानव अपने कंठ से अहा, हा हा, हू हू, ओह, हाउ, हे आदि ध्वनियों को निकालकर अपना अभिप्राय प्रकट करता था। इन ध्वनियों को बाद में स्तोभ और इंटरजेक्शनल क्राई (Interjectional Cry) कहा गया। आदिमानव ने अपना पहला गान शब्दों के अभाव में इन्हीं स्तोभों के माध्यम से गाया होगा, यह अनुमान नहीं विश्वास है। यद्यपि, वैदिक काल में संगीत उन्नत अवस्था में था, किंतु इस काल में संगीत के स्वतंत्र ग्रंथ नहीं लिखे गए तथापि गीत, वाद्य और नृत्य के यथेष्ट उल्लेख मिलते हैं। *ऋग्वेद*, *यजुर्वेद*, *सामवेद* और *अथर्ववेद* के साथ-साथ चारों वेदों की चार संहिताओं में, वेदों की व्याख्या करनेवाले *ब्राह्मण*, *आरण्यक* और *उपनिषद्* आदि ग्रंथों सहित शिक्षा ग्रंथ तथा प्रतिसांख्य जैसे ग्रंथों में संगीत के विषय में प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। वैदिक काल में

ही संगीतोपयोगी ध्वनि के लिए नाद शब्द का प्रयोग शुरू हुआ और उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों के आधार पर क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मंद्र और अतिस्वार्य नामक सात स्वर स्थापित हुए जिन्हें बाद में क्रमश: *षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत* और *निषाद* कहा गया। उदात्त से *गांधार* और *निषाद, अनुदात्त* से *ऋषभ* और *धैवत* तथा स्वरित से *षड्ज, मध्यम* और *पंचम* स्वर विकसित हुए। सर्वप्रथम *नारदीय शिक्षा* में सा, रे, ग, म, प, ध और नि नामों का उल्लेख हुआ है। वीणा के लिए वाण और वाणा संज्ञा का प्रयोग होता था। वीणा शब्द का प्रथम प्रयोग *यजुर्वेद* में हुआ। भूमि दुंदुभि, दुंदुभि और गर्गर जैसे अवनद्ध वाद्यों का वादन हिरण के सींग से होता था। तूणव, बाकर और नाली नामक सुषिर वाद्य भी इस समय प्रचलित थे।

18 पुराणों में से *वायु पुराण*, *मार्कंडेय पुराण* और *विष्णु पुराण* में संगीत का उल्लेख मिलता है। *विष्णु पुराण* में ही भगवान विष्णु का यह प्रसिद्ध कथन है— "नाहं वसामि बैकुंठे योगिनां हृदये न च। मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि: नारद:।"

इस काल में वाद्यों को आतोद्य कहा जाता था और तत्, अवनद्ध, घन तथा सुषिर जैसे इनके चार प्रकार प्रचलित थे। चतुरस्त्र, तिस्त्र, मिश्र और खंड जैसे चार प्रकार के ताल और विलंबित, मध्य तथा द्रुत के रूप में लय के तीन प्रकार प्रचलित थे।

रामायण के प्रमुख पात्र राम और रावण दोनों ही संगीत अनुरागी थे, इसीलिए अयोध्या और लंका दोनों में ही संगीत का अनवरत प्रयोग होता रहता था। आदिकवि वाल्मीकि तथा गोस्वामी तुलसीदास दोनों की ही कृतियों में संगीत का प्रचुर उल्लेख हुआ है। रामायण काल में द्वितंत्री नकुली वीणा, त्रितंत्री वीणा, सप्ततंत्री चित्र वीणा और नौतंत्री विपंची वीणा जैसे तंत्री वाद्य; वेणु, शंख और वंश जैसे सुषिर वाद्य; दुंदुभि, भेरी, पणव, डिंडिम, मुरज, मृदंग और आडंबर जैसे अवनद्ध वाद्य तथा कांस्य निर्मित ताल जैसे घन वाद्य प्रचलित थे। लंका नरेश रावण संगीत के ज्ञाता थे। उनके राज्य की महिलाएँ भी संगीत और नृत्य में प्रवीण थीं। इस काल में संगीत मानव जीवन का एक अभिन्न अंग था और राम की अयोध्या, रावण की लंका तथा सुग्रीव के किष्किंधा पर्वत सहित महर्षि वाल्मीकि के आश्रम तक इसकी लोकप्रियता यथावत थी। राम के पुत्र द्वय कुश और लव के द्वारा रामायण गान का उल्लेख मिलता है।

महाभारत काल में भी संगीत की लोकप्रियता चरम पर थी। कृष्ण जैसे अद्वितीय बाँसुरी वादक और महान नर्तक इसी काल में हुए थे। इस काल में संगीत के लिए गांधर्व शब्द का प्रयोग होता था। तुम्बरू जैसे श्रेष्ठ ऋषि गंधर्व इसी समय हुए थे। कहा जाता है कि तम्बूरा का निर्माण उन्होंने ही किया था, जिसे आज तानपूरा कहा जाता है। महाभारत के आदिपर्व में कंबल, अश्वतर और नारद जैसे गंधर्वों का भी उल्लेख हुआ है, जो कच्छपी वीणा बजाते थे। धनुर्धर अर्जुन ने चित्रसेन से गायन, वादन और नर्तन की शिक्षा प्राप्त करके, अज्ञातवास के समय बृहन्नला के रूप में विराट नरेश की सुपुत्री उत्तरा को इसकी शिक्षा दी थी। अभिजात्य वर्ग के संगीतकारों को गंधर्व कहा जाता था। इनके अलावा मंगलगाथा और स्तुति आदि गाने वाले व्यवसायी गायकों को नट, सूत, बंदी, मागध और वैतालिक कहा जाता था। समाज में संगीत और संगीतकारों का सम्मान था तथा बालिकाओं को संगीत सिखाने के लिए संगीतशालाएँ भी थीं। वाद्य के चारों प्रकार प्रचलित थे जिनमें शंख, भेरी, तूर्य, वारिज और काँसे के घन वाद्य अधिक लोकप्रिय थे।

Reprint 2025-26

चित्र (iv) – गीत एवं वाद्यों की प्रस्तुति

मौर्य काल में सेल्यूकस की संगीतज्ञा पुत्री का विवाह चंद्रगुप्त मौर्य से हो जाने के कारण जहाँ यूनानी संगीत पहली बार भारत आया, वहीं भारतीय संगीत भी यूनान पहुँचा। महिलाओं के लिए संगीत-नृत्य का आरंभिक ज्ञान ज़रूरी माना जाने लगा था। संध्याकालीन मनोरंजन के लिए गणिकाओं के यहाँ जाने और उन्हें अपने यहाँ बुलाने का सिलसिला बढ़ने लगा था। इस काल में संगीत प्रशिक्षण केंद्र भी थे। सम्राट अशोक की पत्नी तिष्यरक्षिता की प्रमुख परिचारिका चारूमित्रा वीणा वादिका थी। अशोक ने जब बौद्ध धर्म का विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार आरंभ किया, तो बौद्ध धर्म के साथ-साथ भारतीय संगीत का भी तिब्बत, चीन, मिस्र, यूनान, जावा, सुमात्रा, कंबोडिया, बर्मा और श्रीलंका आदि देशों के साथ आदान-प्रदान शुरू हो गया।

इसी समय के आस-पास ईसापूर्व दूसरी शताब्दी से ईसा की दूसरी शताब्दी के मध्य, आचार्य भरत मुनि ने *नाट्यशास्त्र* जैसे एक अनुपम ग्रंथ की रचना की, जो आज लगभग दो हज़ार वर्षों बाद भी भारतीय नाट्य, गायन, वादन और नृत्य का आधार ग्रंथ बना हुआ है। यद्यपि भरत मुनि ने नाट्य के संदर्भ में गायन, वादन और नृत्य की चर्चा की है, तथापि यह ग्रंथ आज भी अपनी प्रमाणिकता सिद्ध करते हुए लोगों का मार्गदर्शन कर रहा है। दत्तिल मुनि का ग्रंथ *दत्तिलम्* गुप्त काल की विशेष देन है। समुद्रगुप्त प्रवीण वीणा वादक थे। उस काल के सिक्कों पर उनका वीणा वादन करता हुआ चित्र अंकित है। राजा के संगीतानुरागी होने का स्वाभाविक लाभ संगीत को मिला और वह खूब फला-फूला। समुद्रगुप्त के बाद उनके सुपुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय सिंहासन पर बैठे, जो बाद में विक्रमादित्य के नाम से विख्यात हुए और जिनके दरबार के नौ रत्नों में महाकवि कालिदास जैसे अमूल्य रत्न भी थे। कालिदास कृत काव्य रचनाओं में संगीत का उल्लेख प्रचुर मात्रा में हुआ है। कुछ लोगों का मत है कि इस समय भारतीय संगीत का प्रचार-प्रसार रोम, फ्रांस, इंग्लैंड, आयरलैंड और हंगरी आदि देशों तक हो चुका था। इसके बाद हर्षवर्धन और उनकी बहन राजश्री का भी संगीत के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान रहा। सातवीं शताब्दी में मतंग मुनि रचित *बृहद्देशी* नामक एक महत्वपूर्ण ग्रंथ संगीत जगत को मिला।

इसके बाद मंथर गति से संगीत की यात्रा आगे बढ़ती तो रही, किंतु सोने की चिड़िया कहे जाने वाले इस शांतिप्रिय देश की समृद्धि भी विदेशियों की आँखों में खटकती रही, अत: भारत पर विदेशियों के आक्रमणों का सिलसिला शुरू हो गया। महमूद गजनवी, मोहम्मद गोरी और तैमूर लंग जैसे विदेशी आक्रांता भारत पर आक्रमण करते रहे और यहाँ की धन-संपदा को लूटने के साथ-साथ यहाँ के महत्वपूर्ण ग्रंथों और शिक्षण-संस्थाओं को नुकसान पहुँचाते रहे।

तेरहवीं शताब्दी में संगीत के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण कार्य हुए। एक ओर आचार्य शारंगदेव ने *संगीत रत्नाकर* जैसे अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की, तो दूसरी और हज़रत निज़ामुद्दीन के शिष्य अमीर

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

खुसरो ने कव्वाली और तराना जैसी गीत शैली की शानदार शुरूआत की, वहीं गोपाल नायक ने प्रबंध गायन के क्षेत्र में अपनी दक्षता सिद्ध की।

आचार्य शारंगदेव ने अपने ग्रंथ में मार्गी संगीत के साथ-साथ देशी संगीत के विषय में भी विस्तार से लिखा है। भरत मुनि कृत *नाट्यशास्त्र* और शारंगदेव कृत *संगीत रत्नाकर* ही दो ऐसे ग्रंथ हैं जो उत्तर और दक्षिण दोनों के ही संगीतकारों द्वारा आज भी सर्वाधिक प्रमाणिक माने जाते हैं। *गीतम् वाद्यम्* तथा *नृत्यं त्रयम् संगीतमुच्यते* लिखकर संगीत को विश्लेषित करने वाले शारंगदेव ने अपने इस ग्रंथ के सात अध्यायों में गुणधर्म के आधार पर नाद के छह प्रकारों पुष्ट, अपुष्ट, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म और कृत्रिम पर प्रकाश डाला है। आज पाश्चात्य संगीत में नाद के जो छह प्रकार वाल्ट्ज, बास, टेनर, आल्टो, सोप्रेनो और फाल्सेटो बताये जाते हैं, उनका संपूर्ण विवरण शारंगदेव ने तेरहवीं शताब्दी में ही दे दिया था। ताल अध्याय में मार्गी और देशी तालों का विस्तृत विवरण है। वाद्य अध्याय में वाद्यों के चार प्रकारों पर प्रकाश डाला गया है, तो अंतिम अध्याय में नृत्य और नाट्य के विषय में विस्तार से लिखा गया है।

13वीं से 18वीं शताब्दी तक के काल को भक्ति काल, मध्य काल और आधुनिक काल के नाम से जाना जाता है। आज 21वीं शताब्दी में जो संगीत प्रचलित है— चाहे वह खयाल हो, तराना हो, कव्वाली और गज़ल हो या ठुमरी और टप्पा, वे सब इसी कालखंड में शनै:-शनै: विकसित हुए हैं। इनके आविष्कार का श्रेय किसी एक व्यक्ति को नही दिया जा सकता है क्योंकि इनकी जड़ें इसी भारत की धरती में काफी पहले से समायी हुई थीं। उस्ताद गुलाम रसूल से नवाब वाजिद अली शाह तक ने ठुमरी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, तो उस्ताद गुलाम नबी शोरी ने टप्पा के प्रचार-प्रसार में; इसी तरह सुल्तान हुसैन शर्की से लेकर सदारंग-अदारंग तक ने खयाल गायन के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन सबको अपनी विकास यात्रा तय करने में लगभग 400 वर्षों (14वीं से 18वीं शताब्दी) तक का समय लगा।

भक्ति काल में जितने भी भक्त कवि हुए, वे सभी संगीत के भी बहुत अच्छे ज्ञाता थे और उनकी उस समय की लिखी हुई रचनाओं के आधार पर आज भी संगीत की प्रामाणिकता सिद्ध की जा रही है। इनमें स्वामी हरिदास, वल्लभाचार्य, सूरदास, तुलसीदास, चैतन्य महाप्रभु, कुंभनदास, नरसिंह दास, छीतस्वामी, परमानंद दास, गोविंद स्वामी, मीराबाई, गुरू नानक देव और निम्बार्काचार्य आदि जैसे कई नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। लगभग सभी मुगल बादशाह संगीत प्रेमी थे, अत: उनके प्रोत्साहन से संगीत की विकास यात्रा निरंतर चलती रही।

सत्रहवीं शताब्दी में ही पं. अहोबल की कृति *संगीत पारिजात* और पं. व्यंकटमखी की कृति *चतुर्दण्डी प्रकाशिका* का प्रकाशन हुआ था। औरंगज़ेब की मृत्यु 1707 में हुई और 1707 से 1718 तक कोई विशेष सांगीतिक घटना नहीं घटी। इस बीच बहादुर शाह प्रथम, जहाँदारा शाह और फ़र्रूखसियर दिल्ली के तख्त पर रहे। 1719 में मुहम्मद शाह 'रंगीला' गद्दी पर बैठे। सदारंग और अदारंग जैसे ध्रुपद गायक इनके दरबार में थे, जिन्होंने अनेक खयालों की रचना करके उन्हें मुहम्मद शाह की मुद्रा से अंकित करके लोकप्रियता के शिखर तक पहुँचाया। इसी समय खुसरो खाँ ने अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष कर रहे तब्ल अथवा तबल नामक अवनद्ध वाद्य में समायानुकूल और संगीतोचित सुधार कर उसे तबला नाम से संगीत जगत में स्थापित किया। फलस्वरूप उन्हें उस्ताद सुधार खाँ का खिताब प्रदान किया गया। यहीं

© NCERT not to be republished

से तबले के दिल्ली घराने की तो शुरूआत हुई ही, संगीत के अन्य घरानों की भी नींव पड़ी। सितार का आविष्कार भी इसी समय माना जाता है।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संगीत के क्षेत्र में दो महामानवों – विष्णु द्वय का आविर्भाव हुआ। 10 अगस्त 1860 को 'चतुर' पं. विष्णु नारायण भातखंडे और 1872 को पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर का जन्म हुआ, जिन्होंने संगीत के क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव का सिलसिला शुरू किया। इन दोनों महान संगीतकारों ने मुट्ठी भर घरानेदार अशिक्षित संगीतकारों तक सिमटी कला को जन-जन तक पहुँचाने और सार्वजनिक संगीत सभाओं का सिलसिला शुरू किया।

इन्होंने संगीत विद्यालयों की स्थापना और संगीत पुस्तकों का लेखन किया। इस बीच भारतीय संगीत के सम्मोहन ने बुद्धिजीवी संगीतकारों को भी अपनी ओर आकर्षित करना शुरू किया और वे भी इसमें रूचि लेने लगे। उन्होंने विभिन्न भाषाओं के सांगीतिक ग्रंथों का अध्ययन करके हिंदी और अंग्रेज़ी भाषा में उनका सहज-सरल रूपांतरण प्रकाशित करके आम लोगों को उपलब्ध कराया। भातखंडे जी ने एक अत्यंत सरल स्वर-लिपि और ताल-लिपि पद्धति का निर्माण करके वाचिक परंपरा से दी जा रही संगीत शिक्षा को लिखने की सुव्यवस्था की।

बीसवीं शताब्दी एक तरह से भारतीय संगीत का स्वर्ण युग सिद्ध हुआ। भातखंडे जी की पुस्तकें *लक्ष्य संगीत*, *हिंदुस्तानी संगीत पद्धति के छह भाग*, *लक्षण गीत*, *ए शार्ट हिस्टोरिकल सर्वे ऑफ़ द म्यूज़िक ऑफ़ अपर इंडिया* ने लोगों के लिए चिंतन का नया द्वार खोला। भातखंडे जी ने *संगीत रत्नाकर*, *संगीत दर्पण*, *राग विबोध* एवं *संगीत पारिजात* जैसे ग्रंथों का संपादन और पुनर्प्रकाशन कराया। साथ ही, *अभिनव राग मंजरी*, *हृदय कौतुक* और *हृदय प्रकाश* जैसे अप्राप्य ग्रंथों को ढूँढ़कर उनका भी प्रकाशन कराया।

बचपन में ही अपनी नेत्र ज्योति खो चुके पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर ने भी एक सूक्ष्म और वैज्ञानिक ताल-लिपि और स्वर-लिपि पद्धति का आविष्कार किया। पलुस्कर जी ने खयाल गायन में प्रयुक्त अति शृंगारिक और अश्लील शब्दों के स्थान पर शालीन शब्दों के प्रयोग पर बल देते हुए *संगीत बाल बोध*, *राग प्रवेश*, *संगीत बाल प्रकाश*, *स्वल्पालाप गायन*, *संगीत तत्व दर्शक* और *भजनामृत लहरी* जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकों का लेखन भी किया। ग्वालियर घराने के प्रतिष्ठित गायक पलुस्कर जी आज़ादी के पूर्व कांग्रेस के अधिवेशनों में जाकर वंदे मातरम् का गायन करते थे।

भारत में संगीत प्रशिक्षण केंद्रों का सिलसिला सैकड़ों वर्ष पुराना है। लेकिन, प्राचीन काल में संगीत के गुरूकुल होते थे, जबकि पलुस्कर जी और भातखंडे जी ने इसे विद्यालयीन स्वरूप दिया। पलुस्कर जी ने सन् 1901 में अविभाजित भारत के लाहौर में आधुनिक युग के प्रथम संगीत विद्यालय 'गंधर्व महाविद्यालय' की स्थापना की, जहाँ पं. विनायक राव पटवर्धन, पं. ओंकारनाथ ठाकुर, पं. नारायण राव व्यास, प्रो. बी.आर. देवधर और पं. विनयचंद्र मौद्गल्य जैसे यशस्वी संगीतकारों ने उनसे शिक्षा प्राप्त की थी। पलुस्कर जी ने अपने सभी शिष्यों से कहा कि वे अपने-अपने गृह नगरों में जाकर गंधर्व महाविद्यालय की स्थापना करें और इस तरह से यह सिलसिला आगे बढ़ता रहा। 1905 में पलुस्कर जी ने नवी मुंबई के वाशी शहर में गंधर्व महाविद्यालय की स्थापना की। 1906 में बनारस में उत्तर प्रदेश

© NCERT not to be republished

का प्रथम संगीत विद्यालय 'काशी संगीत समाज', संगीत नायक पं. दरगाही मिश्र के प्रयासों से स्थापित हुआ, जिसके वे संस्थापक प्राचार्य थे। 1914 में पं. कृष्णराव शंकर पंडित ने अपने पिता शंकर पंडित के नाम पर ग्वालियर में 'शंकर गंधर्व महाविद्यालय' की स्थापना की। 1926 में प्रयागराज में 'प्रयाग संगीत समिति' की स्थापना हुई। ग्वालियर नरेश और भातखंडे जी के प्रयासों से 1918 में ग्वालियर में 'माधव संगीत महाविद्यालय' स्थापित हुआ। 1926 में ही राय उमानाथ बली, राजेश्वर बली, पं. भातखंडे जी और उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल सर विलियम मैरिस के प्रयासों से लखनऊ में 'मैरिस कॉलेज ऑफ़ हिंदुस्तानी म्यूज़िक' की स्थापना हुई। देश को आज़ादी मिलने पर मैरिस कॉलेज के तत्कालीन प्राचार्य और भातखंडे जी के शिष्य पं. एस.एन. रातनजनकर जी के प्रयासों से इसका नामकरण 'भातखंडे हिंदुस्तानी संगीत महाविद्यालय' हुआ। फिर यह 'भातखंडे संस्कृति विश्वविद्यालय' के नाम से गतिशील हुआ। बड़ौदा नरेश और पं. भातखंडे की कोशिशों से बड़ौदा में भी एक संगीत महाविद्यालय स्थापित हुआ जो इस समय एम.एस. यूनिवर्सिटी, वड़ोदरा का एक भाग है। सौरिंद्र मोहन टैगोर, कैप्टन डे, कैप्टन विलियर्ड, डॉ. कर्नल टाइड जैसे प्रबुद्ध लेखकों की शोधपरक पुस्तकों ने भारतीय संगीत के भंडार को समृद्ध किया।

देश को स्वतंत्रता मिलने के पश्चात कलाओं के विषय में नीतिगत निर्णय लेने के लिए विभिन्न राज्यों सहित देश की राजधानी दिल्ली में भी केंद्रीय 'संगीत नाटक अकादमी' की स्थापना हुई। 1956 में चंडीगढ़ में 'प्राचीन कला केंद्र' की स्थापना हुई, तो 'इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय' जैसे प्रथम कला संगीत विश्वविद्यालय की भी खैरागढ़ (छत्तीसगढ़) के राजा के सौजन्य से स्थापना हुई। इन संस्थाओं के माध्यम से लाखों ऐसे लोग, जिन्हें संगीत विरासत में नहीं मिला है और जो संगीत से प्रेम करते हैं, प्रशिक्षित और पारंगत हो रहे हैं। विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में संगीत प्रशिक्षण की उच्चस्तरीय व्यवस्था हुई है। संगीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देने वालों को 1955 से प्रतिवर्ष पद्म श्री, पद्म भूषण, पद्म विभूषण और भारत रत्न जैसे अलंकरण मिल रहे हैं। प्रतिभाशाली संगीतार्थियों को उच्च शिक्षा और शोध कार्य के लिये छात्रवृत्ति और अध्येतावृत्ति भी सरकार की ओर से प्रदान की जाती है। रेडियो का प्रसारण भारत में 1927 से शुरू हो गया था। तब इसका नाम *इंडियन ब्राडकास्टिंग कंपनी लिमिटेड* था। 1936 में यह भारत सरकार के अधीन आयी और इसका नामकरण *ऑल इंडिया रेडियो* हुआ। रेडियो का आगमन संगीत जगत के लिए एक क्रांतिकारी कदम था। जिस समय दिल्ली से मुंबई जाने में एक सप्ताह लग जाता था, तब दिल्ली में गाते हुए किसी संगीतकार को पूरे देश में एक साथ सुन पाना किसी आश्चर्य से कम नहीं था। रेडियो और सभागारों के ध्वनि विस्तारक यंत्रों (माइक्रोफ़ोन) ने संगीतकारों को अपने संगीत का स्वरूप बदलने के लिए भी प्रेरित किया। बुलंद और दबंग आवाज़ की जगह कर्णप्रिय, मधुर और मर्मस्पर्शी गायकी को वरीयता मिलने लगी। सांगीतिक प्रस्तुतियों में सौंदर्यात्मिक तत्वों का विशेष रूप से समावेश होने लगा। 1970 में दूरदर्शन के आगमन ने श्रवणीय संगीत कला को दर्शनीय भी बना दिया है। अब संगीतकार अपने संगीत के साथ-साथ वेशभूषा, रूप सज्जा, हाव-भाव और मुख मुद्रा पर भी विशेष ध्यान देने लगे हैं।

तत्कालीन शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के सत्प्रयासों से 9 अप्रैल 1950 को दिल्ली में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (Indian Council of Cultural Relations) की स्थापना हुई,

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

जिसके माध्यम से भारत के संगीतकारों को भारतीय संगीत-नृत्य की शिक्षा देने के लिए दुनिया के कई देशों में एक से तीन वर्ष तक के लिए भेजा जाता है और वहाँ के संगीतकारों को भारत में आमंत्रित करके उनके कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इस तरह संगीत और संस्कृति के आदान-प्रदान का सिलसिला आरंभ हुआ। परिषद की शाखाएँ दुनिया के कई देशों में हैं। दुनिया के अनेक देशों के युवक-युवतियाँ भारतीय संगीत से आकृष्ट होकर भारतीय संगीत, नृत्य सीखने के लिए प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में भारत आते हैं। यह भारतीय संगीत की उत्कृष्टता का प्रभाव ही है कि आज अनेक देशों के विश्वविद्यालयों में भारतीय सांगीतिक कलाओं के प्रशिक्षण की उच्चस्तरीय व्यवस्था है। यह भी भारतीय संगीत की महानता का ही परिचायक है कि पं. रविशंकर के साथ युगल वादन करने वाले बीटल्स प्रमुख जॉन हैरिसन, पं. रविशंकर के शिष्य बन गए और भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं से प्रभावित रहे। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की दो उच्च स्तरीय पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं— हिंदी में *गगनांचल* और अंग्रेज़ी में *होराइज़िन*।

1952 में तत्कालीन शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने अखिल भारतीय स्तर पर केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी की स्थापना का निर्णय लिया। 28 जनवरी 1953 को भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने इसका उद्घाटन किया था और इस अवसर पर स्वागत भाषण अबुल कलाम आज़ाद ने दिया था। अकादमी संगीत, नृत्य और नाटक के प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न स्तरीय प्रयास करती है। इन विधाओं के प्रतिष्ठित कलाकारों को प्रतिवर्ष अकादमी पुरस्कार स्वरूप एक लाख रूपया और रत्न सदस्यता स्वरूप तीन लाख रूपया प्रदान किया जाता है। अकादमी द्वारा अंग्रेज़ी में *संगीत नाटक*, हिंदी में *संगना*, *योग पर्व* और *राजभाषा रूपाम्बरा* जैसी स्तरीय पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। अकादमी द्वारा संगीत और नृत्य विषयक उच्चस्तरीय पुस्तकें भी प्रकाशित की जाती हैं। इसके अलावा *संगीत* (हाथरस), *संगीत कला विहार* (मिरज), *नाद रंग एवं छायानट* (लखनऊ), *स्वर सरिता* (जयपुर), *कला समय* (भोपाल), *स्तोभ* (दरभंगा), *अनहद लोक* (प्रयागराज) *वागेश्वरी* ई-जर्नल, *संगीत गैलेक्सी* ई-पत्रिका तथा *आजकल* (दिल्ली) जैसी पत्रिकाएँ भी संगीत-नृत्य के विकास में जुटी हैं।

चित्र (v) – कला उत्सव में अवनद्ध और घन वाद्य बजाते हुए स्कूल के बच्चे

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जब राजाओं-नवाबों के साथ-साथ अंग्रेज़ों की पकड़ भी सत्ता पर कमज़ोर पड़ने लगी थी, तब संगीत का एक नया श्रोता-दर्शक वर्ग उभरने लगा था और इसी दौरान पलुस्कर जी तथा भातखंडे जी सहित कई अन्य लोग भी संगीत समारोहों का आयोजन करने लगे थे। पलुस्कर जी उस समय अपने कार्यक्रमों के लिये 50 पैसे का टिकट लगाते थे। देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद कई अन्य संस्थाओं ने भी इस तरह का आयोजन करना शुरू किया। दिल्ली में संगीत नाटक अकादमी और भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के कार्यक्रमों

Reprint 2025-26

सहित विष्णु दिगंबर जयंती, शंकरलाल फेस्टिवल, स्वामी हरिदास संगीत समारोहों की काफी ख्याति है। आकाशवाणी द्वारा आयोजित आकाशवाणी संगीत सम्मेलन अलग-अलग संगीतकारों के साथ देश के अलग-अलग भागों में संपन्न होता है। मुंबई के सुर सिंगार संसद के कार्यक्रमों और कोलकाता के डोबर लेन संगीत समारोहों की भी विशेष ख्याति रही है। इनके अलावा दिल्ली का साहित्य कला परिषद संगीत समारोह, कथक केंद्र (दिल्ली) का कथक महोत्सव, मुंबई के नेशनल सेंटर फ़ॉर परफ़ॉर्मिंग आर्ट्स और म्यूज़िक फोरम द्वारा आयोजित संगीत समारोह, खजुराहो का नृत्य समारोह, उड़ीसा का राजारानी संगीत समारोह, ग्वालियर का तानसेन संगीत समारोह और जालंधर के हरबल्लभ संगीत समारोह सहित वाराणसी के संकट मोचन संगीत समारोहों की भी विशेष ख्याति है। विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा आयोजित संगीत समारोह तथा स्थानीय स्तर पर कार्य कर रही कई संस्थाएँ भी समय-समय पर इस तरह के आयोजन करती रहती हैं, जिनमें जयपुर का श्रुति मंडल संगीत समारोह, कोलकाता का आई.टी.सी. संगीत समारोह, मुंबई का गुणीदास संगीत समारोह, पुणे का सवाई गंधर्व संगीत समारोह आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

भारत सरकार स्वयं भी विदेशी सरकारों के साथ मिलकर समय-समय पर भारत महोत्सव का आयोजन वृहद स्तर पर करती है, जिसमें शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम तथा लोक संगीत और नृत्य के अनेक संगीतकारों को भाग लेने के अवसर मिलते रहते हैं। जब भारतीय संगीतकारों का विदेशी संगीतकारों के साथ ताल-मेल बढ़ा तो भारतीय और पाश्चात्य संगीतकारों ने साथ मिलकर काम करना शुरू किया। पं. रविशंकर, उस्ताद अली अकबर, पं. वी.जी. जोग, पं. भजन सोपोरी, पं. विश्वमोहन भट्ट, उस्ताद ज़ाकिर हुसैन, पं. रोनू मजूमदार, पं. अभय रुस्तम सोपोरी, अनुष्का शंकर इत्यादि जैसे अनेक भारतीय संगीतकारों ने लॉर्ड यहूदी मेन्यूहीन, जॉर्ज हैरिसन, जुबीन मेहता, आर.वाई. कूडर, जूलियन ब्रीम, आंद्रे, बेला फ्रैंक और जॉन हैजल आदि के साथ मिलकर एल्बम बनाते हुए अपने संगीत को विश्वस्तरीय बनाया, तो भारतीय नृत्यकारों ने फ्लैमिंको और स्पेनिश क्लासिकल डांस के साथ अपनी प्रस्तुतियाँ दीं। नतीजा यह हुआ कि मैगसेयसेय अवार्ड, सोवियतलैंड नेहरू पुरस्कार, ग्रैमी अवार्ड और ऑस्कर सम्मानों से भारतीय संगीतकार भी सम्मानित होने लगे।

बीसवीं शताब्दी में संगीत के अनेक स्वनामधन्य क्रांतिकारी संगीतकारों के अवतरण के कारण यह युग संगीत का स्वर्ण युग बन गया। इस युग के शिक्षित और चिंतनशील संगीतकारों ने आँखें बंद करके सिर्फ़ रियाज़ ही नहीं किया, संगीत पर शोधपूर्ण चिंतन और मनन भी किया। हंसध्वनि, चारुकेशी, कलावती जैसे दक्षिण भारतीय रागों का गायन-वादन उत्तर भारतीय संगीतकारों ने आरंभ किया, तो दोनों शैली के संगीतकारों ने एक साथ प्रस्तुतियाँ देनी भी शुरू कीं। उत्तर भारतीय वाद्य तानपूरा, सितार और वायलिन आदि की बनावट में परिवर्तन करके इन्हें और समृद्ध किया गया। सितार में तुम्बा, चिकारी और तरब के तारों को जोड़ा गया। मुख्य तारों के क्रम में भी परिवर्तन किया गया। चार तार वाले तानपूरा और वायलिन में भी क्रमशः पाँच और छह तारें लगायी जाने लगीं। इसके साथ ही बाँसुरी, सारंगी, शहनाई और संतूर जैसे भारतीय वाद्यों ने, तो वहीं वायलिन, हारमोनियम और गिटार जैसे पाश्चात्य वाद्यों ने भी स्वतंत्र शास्त्रीय वाद्यों के रूप में अपने अस्तित्व का परिचय देना शुरू कर दिया। आज 21वीं शताब्दी में तो सिंथेसाइजर, मेंडोलिन और बेंजों जैसे साजों पर भी भारतीय शास्त्रीय संगीत की सुंदर प्रस्तुतियाँ होने लगी हैं।

Reprint 2025-26

चित्र (vi) – खोल के साथ बाँसुरी

संगीत के विषय में इस देश में सदियों तक सामंतवादी मानसिकता हावी रही। इस सच्चाई के बावजूद कि शास्त्रीय संगीत की आज की अनेक विधाएँ लोक संगीत की कोख से जन्मी हैं, लोग शास्त्रीय संगीत को तो अभिजात्य और उच्चस्तरीय संगीत मानते रहे, जबकि लोक संगीत को अनपढ़, ग्रामीण किसानों से जोड़कर देखते हुए गौण मानते रहे। लेकिन, देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद इस सोच में बदलाव आया और लोक संगीत तथा लोक नृत्य के कलाकारों को भी जहाँ एक ओर आकाशवाणी तथा दूरदर्शन द्वारा सर्वोच्च श्रेणी के कलाकार के रूप में मान्यता प्रदान की गई, वहीं दूसरी ओर देश के प्रतिष्ठित संगीत समारोहों के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय संगीत-नृत्य समारोहों और भारत महोत्सव आदि में भी उन्हें ससम्मान आमंत्रित किया जाने लगा। इसके अलावा लोक और आदिवासी संगीत-नृत्य के संरक्षण और संवर्धन के लिए शोध कार्य और परिसंवादों के साथ-साथ अनेक ठोस कदम भी उठाये जाने लगे। साथ ही, ऐसे अनेक संगीतकारों को क्षेत्रीय स्तर से चुनकर न केवल राज्य और केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी पुरस्कारों और पद्म सम्मानों से, बल्कि भारत रत्न जैसे अलंकरण से भी विभूषित किया गया है। आज हमें स्मरण रखना चाहिए कि जहाँ भारतीय शास्त्रीय संगीत के पुरोधा पं. रविशंकर और पं. भीमसेन जोशी को देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' का अलंकरण मिला है, वहीं शहनाई को लोकप्रिय बनाने वाले उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ, असम के लोक गायक भूपेन हजारिका और अद्वितीय पार्श्व गायिका लता मंगेशकर को भी इस सम्मान से विभूषित किया गया है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि आज संगीत की सभी विधाओं का प्रचार-प्रसार और चतुर्दिक विस्तार हो रहा है।

चौंसठ कलाओं और पाँच ललित कलाओं में संगीत को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। मनुष्य आरंभ से ही अपने कंठ स्वरों और हाव-भाव के माध्यम से अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त कर रहा है। बाद में सभ्यता के विकास के बाद संगीत इसका सर्वश्रेष्ठ माध्यम बना। विभिन्न स्वरों, रागों, वाद्यों, लय और तालों के साथ-साथ भाव-भंगिमाओं का भी प्रयोग मनुष्य अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए करता रहा है। आरंभिक चरण में संगीत के सिर्फ़ दो मुख्य उद्देश्य थे — ईश्वर की आराधना और अपनी भावनाओं को व्यक्त करना। आगे चलकर यह मानसिक, आत्मिक और बौद्धिक आनंद का भी माध्यम बना। लेकिन, बदलते समय के साथ संगीत में कई नये आयाम जुड़ते चले गए और अब यह मनुष्य के सर्वांगीण विकास में सक्षम सिद्ध हो रहा है। संगीत का चिकित्सा के रूप में प्रयोग पहले भी होता था। *चरक संहिता* में इसका उल्लेख है। हमारी 80 प्रतिशत से अधिक बीमारियाँ मानसिक कारणों से होती हैं और मानसिक स्थिति को ठीक करने में संगीत से अधिक कारगर कुछ भी नहीं है। संगीत का यह बहुत बड़ा गुण है कि यह व्यक्ति को मानसिक तनाव, निराशा, हताशा और अवसाद से मुक्त करता है। दिव्यांगता की चुनौतियों को भी संगीतकारों ने बहादुरी से स्वीकारा है। पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर

Reprint 2025-26

और बनारस घराने के प्रतिष्ठित ताबलिक पं. दुर्गा सहाय दोनों ही बचपन में अपनी नेत्र ज्योति खो चुके थे। इसीलिए पं. दुर्गासहाय को लोग सूरदास नन्हू जी के नाम से अधिक जानते हैं। लेकिन, इन दोनों के पास संगीत जैसी कला की ज्योति थी, अत: संगीत के इतिहास में इनका नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। सूरदास नन्हू जी के लिए लोग कहते थे कि ईश्वर ने इनकी दो आँखें लेकर इनके हाथ की दसों अँगुलियों में रौशनी दे दी थी। इसी तरह से पं. बलवंत राय भट्ट, संत सरवन सिंह गंधर्व, बलदेव कृष्ण शर्मा, अनिल ब्योहार, डॉ. इब्राहिम अली जैसे प्रज्ञा चक्षु संगीतकारों ने भी संगीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मशहूर संगीतकार जोड़ी सोनिक-ओमी के सोनिक जी, जिनका पूरा नाम मनोहर लाल सोनिक था, ने भी दृष्टिहीनता के आगे हार मानने से इंकार कर दिया और चित्रपट के सदाबहार गीतों को रचा। सुप्रसिद्ध संगीत निर्देशक, गायक और गीतकार रवींद्र जैन ने फिल्म संगीत के इतिहास में अपना नाम स्वर्णाक्षरों से अंकित करते हुए यह साबित किया कि मन की आँखों से वह सब कुछ भी देखा जा सकता है जिसे शरीर की आँखों से नहीं देखा जा सकता। पं. ज्ञान प्रकाश घोष ने भी अपनी एक आँख खोने के बावजूद संगीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान बनाया।

इसीलिए आज संगीत सीखने का अर्थ सिर्फ मंचीय संगीतकार बनना मात्र नहीं रह गया है। आज संगीत की शिक्षा प्राप्त करके संगीत चिकित्सक भी बना जा सकता है। विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में संगीत अध्यापक, आकाशवाणी और दूरदर्शन में संगीत अधिकारी और संगीत स्टूडियो में रिकॉर्डिस्ट भी बना जा सकता है। परिकल्पनाशील संगीतकारों की तलाश में विज्ञापन कंपनियाँ भी रहती हैं और फिल्म इंडस्ट्री भी। संगीत सीखकर लेखक, समीक्षक भी बना जा सकता है और एक अच्छा इंसान भी। अच्छा संगीतकार बनने के लिए अच्छा इंसान होना आवश्यक है। किसी-न-किसी कला में अभिरूचि होने से जीवन सौंदर्ययुक्त हो सकता है। विशेषकर, संगीत हमें सहृदय और संवदेनशील बनाता है। यह हमारे मन में भावुकता और आंतरिक शक्ति का भी विकास करता है। इसीलिए सद्भावना के विकास के लिए भी संगीत और संगीतकारों को ही चुना जाता है। अपने पड़ोसी देशों से हमारे राजनैतिक संबंध चाहे जितने भी कटु हों, सांगीतिक संबंध सदैव मधुर रहते हैं। वहाँ भैरव, भैरवी और शंकरा जैसे अनेक राग गाये जाते हैं, तो यहाँ यमन, बिलावल और दरबारी जैसे राग। इसीलिए संगीत को वैश्विक भाषा (यूनिवर्सल लैंग्वेज) कहा जाता है।

महात्मा गाँधी ने एक बार विद्यालयों में संगीत शिक्षा को अनिवार्य बनाने का सुझाव देते हुए कहा था कि "*सामवेद* की ऋचाएँ संगीत की खदान हैं। *कुरान शरीफ़* की एक भी आयत बिना स्वर के नहीं कही जाती। ईसाई धर्म में डेविड के *साम* (Psalm) सुनें, तो ऐसा लगता है मानो हम *सामवेद* ही सुन रहे हैं। इसीलिए इस योग और संगीत की शिक्षा बच्चों को प्राथमिक कक्षा से ही अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए।" व्यावसायिक रूप से संगीत को न अपनाने की इच्छा के बावजूद सभी को संगीत इसलिए भी सीखना चाहिए कि यह हमें बौद्धिक, मानसिक और आत्मिक रूप से मज़बूत करता है। भारत धर्म और आदर्श प्रधान देश है, जिसमें संगीत की सतत धारा सदा प्रवाहित होती रही है। इसके कण-कण में राम, कृष्ण, अल्लाह, बुद्ध, महावीर और नानक आदि की आत्मा समायी हुई है। इस देश के निवासी शुरू से ही सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह के पंच महाव्रतों को मानते आ रहे हैं। ऐसी स्थिति में इसकी वाणी, इसका संगीत क्यों न विश्व कल्याणकारी होगा।

Reprint 2025-26

अवनद्ध वाद्य

विषय सूची

आमुख *iii*

प्राक्कथन *v*

भूमिका — भारतीय संगीत का ऐतिहासिक अवलोकन *ix*

प्रयोगात्मक

1. ताल की अवधारणा तथा संगीत में इसका महत्व 1
2. संगीत लिपि पद्धति का संक्षिप्त इतिहास 13
3. तबला और पखावज के स्वतंत्र वादन में बंदिशों का महत्व 28

शास्त्र

4. विभिन्न वाद्यों का परिचय 44
5. तबला एवं पखावज वाद्य की उत्पत्ति तथा विकास 58
6. कर्नाटक ताल-लिपि पद्धति की अवधारणा 72
7. जीवन परिचय 80

परिशिष्ट 1 — संगीत के कुछ विशिष्ट शिक्षा संस्थान *93*

परिशिष्ट 2 — दृश्य कला और प्रदर्शन कला पाठ्यक्रम संचालित करने वाले कुछ विश्वविद्यालय *94*

© NCERT
not to be republished

Reprint 2025-26

प्रयोगात्मक

© NCERT
not to be republished